

Chapter सात

इन्द्र द्वारा गुरु बृहस्पति का अपमान

इस अध्याय में बताया गया है, कि स्वर्ग के राजा इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति के चरणकमलों के प्रति अपराध किया; फलतः बृहस्पति ने देवताओं का परित्याग कर दिया जिससे वे पुरोहितविहीन हो गये। किन्तु देवताओं के अनुनय-विनय पर ब्राह्मण त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ने पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया।

एक बार देवताओं के राजा इन्द्र अपनी पत्नी शचीदेवी के साथ विराजमान थे और सिद्ध, चारण तथा गंधर्व जैसे देवतागण उनकी प्रशंसा कर रहे थे, तभी देवताओं के गुरु बृहस्पति ने उस सभा में प्रवेश किया। अपने ऐश्वर्य के मद में चूर होने के कारण इन्द्र ने बृहस्पति का सत्कार नहीं किया, इससे बृहस्पति को इन्द्र के भौतिक ऐश्वर्य में मद में चूर होने का पता लग गया। अतः वे इन्द्र को पाठ पढ़ाने के लिए सभा से चुपके से निकल लिये। इन्द्र को पश्चात्ताप हुआ कि अपने ऐश्वर्य-मद के कारण वह अपने गुरु का आदर करना भूल गया। वह अपने गुरु से क्षमा माँगने के लिए अपने महल से चल पड़ा, किन्तु कहीं भी उसकी बृहस्पति से भेंट नहीं हुई।

अपने गुरु का निरादर करने के कारण इन्द्र का सारा ऐश्वर्य जाता रहा और असुरों ने एक बड़े युद्ध में देवताओं को परास्त करके इन्द्र के सिंहासन को हथिया लिया। तब इन्द्र देवताओं सहित ब्रह्माजी की शरण में आया। स्थिति से अवगत होने पर श्रीब्रह्मा ने गुरु के प्रति किये गये इस अपराध के लिए देवताओं की भर्त्सना की। ब्रह्माजी की आज्ञानुसार देवताओं ने विश्वरूप को, जो त्वष्टा का पुत्र एवं ब्राह्मण था, अपना पुरोहित बना लिया। तब उन्होंने विश्वरूप के पौरोहित्य में यज्ञ किये और असुरों पर विजय प्राप्त की।

श्रीराजोवाच

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ।

एतदाचक्ष्व भगवञ्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने पूछा; कस्य हेतोः—किस कारण से; परित्यक्ताः—त्यागे गये; आचार्येण—अपने गुरु बृहस्पति द्वारा; आत्मनः—अपने ही; सुराः—समस्त देवता; एतत्—यह; आचक्ष्व—कृपया वर्णन करें; भगवन्—हे मुनि (शुकदेव गोस्वामी); शिष्याणाम्—शिष्यों का; अक्रमम्—अपराध; गुरौ—गुरु के प्रति।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे महामुनि! देवताओं के गुरु बृहस्पति ने देवताओं का परित्याग क्यों किया जो उनके ही शिष्य थे। देवताओं ने अपने गुरु के साथ ऐसा कौन सा अपराध किया? कृपया मुझसे इस घटना का वर्णन करें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है—

सप्तमे गुरुणा त्यक्तैर्देवैर्देत्यपराजितैः ।

विश्वरूपो गुरुत्वेन वृतो ब्रह्मोपदेशतः ॥

“इस सातवें अध्याय में बताया गया है कि किस प्रकार देवताओं द्वारा बृहस्पति का तिरस्कार हुआ, किस प्रकार बृहस्पति ने उन्हें त्यागा और किस प्रकार असुरों से पराजित होकर देवताओं ने ब्रह्माजी के उपदेशानुसार अपना यज्ञ कराने के लिए विश्वरूप को पुरोहित रूप में स्वीकार किया।”

श्रीबादरायणिरुवाच

इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ।

मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैरभुभिर्नृप ॥ २ ॥

विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ।

निषेव्यमाणो मघवान्स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ।

पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥ ५ ॥

युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ।

विराजमानः पौलम्या सहार्धासनया भृशम् ॥ ६ ॥

स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ।

नाभ्यनन्दत सम्प्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥

वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।

नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया; इन्द्रः—राजा इन्द्र; त्रि-भुवन-ऐश्वर्य—तीनों लोकों के ऐश्वर्य का स्वामी होने के कारण; मद—घमंड से; उल्लङ्घित—जिसने उल्लंघन किया; सत्-पथः—वैदिक सभ्यता का मार्ग; मरुद्भिः—वायु के देवताओं द्वारा, जो मरुताण कहलाते हैं; वसुभिः—आठ वसुओं द्वारा; रुद्रैः—ग्यारह रुद्रों के द्वारा; आदित्यैः—आदित्यों के द्वारा; ऋभुभिः—ऋभुओं के द्वारा; नृप—हे राजन्; विश्वेदेवैः च—तथा विश्वदेवों के द्वारा; साध्यैः—साध्यों के द्वारा; च—भी; नासत्याभ्याम्—दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा; परिश्रितः—घिरे हुए; सिद्ध—सिद्धलोक के निवासियों द्वारा; चारण—सभी चारण; गन्धर्वैः—तथा गन्धर्वों से; मुनिभिः—बड़े बड़े साधुओं द्वारा; ब्रह्मवादिभिः—अत्यन्त विद्वान् निर्गुणवादियों द्वारा; विद्याधर-अप्सरोभिः च—तथा विद्याधरों और अप्सराओं द्वारा; किन्नरैः—किन्नरों के द्वारा; पतग-उरगैः—पक्षियों तथा सर्पों के द्वारा; निषेव्यमाणः—सेवित होकर; मघवान्—राजा इन्द्र; स्तूयमानः च—तथा स्तुति किये जाने पर; भारत—हे महाराज परीक्षित; उपगीयमानः—कीर्ति का गान होने पर; ललितम्—अत्यन्त मधुर; आस्थान—अपनी सभा में; अध्यासन-आश्रितः—सिंहासन पर विराजमान; पाण्डुरेण—श्वेत; आतपत्रेण—सिर के ऊपर

छत्र सहित; चन्द्र-मण्डल-चारुणा—चन्द्रमा के मंडल के समान सुन्दर; युक्तः—से युक्त; च अन्यैः—तथा अन्य से; पारमेष्ठ्यैः—महाराजोचित; चामर—चँवर; व्यजन-आदिभिः—पंखे आदि सामग्रियों से; विराजमानः—चमकता हुआ; पौलम्या—अपनी पत्नी शची के; सह—साथ; अर्ध-आसनया—आधे सिंहासन पर स्थित; भृशम्—अत्यधिक; सः—वह (इन्द्र); यदा—जब; परम-आचार्यम्—परमादरणीय गुरु को; देवानाम्—समस्त देवताओं के; आत्मनः—स्वयं का; च—और; ह—निस्सन्देह; न—नहीं; अभ्यनन्दत—सत्कार किया; सम्प्राप्तम्—सभा में प्रकट होकर; प्रत्युत्थान—सिंहासन से उठकर; आसन-आदिभिः—तथा आसन इत्यादि से; वाचस्पतिम्—देवताओं के पुरोहित, बृहस्पति को; मुनि-वरम्—साधुओं में श्रेष्ठ; सुर-असुर-नमस्कृतम्—देवताओं तथा असुरों के द्वारा समान रूप से सम्मानित; न—नहीं; उच्चाल—उठकर खड़ा हुआ; आसनात्—सिंहासन से; इन्द्रः—इन्द्र; पश्यन् अपि—देखकर भी; सभा-आगतम्—सभा में आते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्! एक बार तीनों लोकों के ऐश्वर्य से अत्यधिक गर्वित हो जाने के कारण स्वर्ग के राजा इन्द्र ने वैदिक आचार-संहिता का उल्लंघन कर दिया। वे सिंहासन पर आसीन थे और उनके चारों ओर मरुत, वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभु, विश्वदेव, साध्य, अश्विनी-कुमार, सिद्ध, चारण, गंधर्व तथा सभी बड़े बड़े ऋषि मुनियों के अतिरिक्त विद्याधर, अप्सराएँ, किन्नर, पतंग (पक्षी) तथा उरग (सर्प) भी बैठे थे। वे सभी इन्द्र की स्तुति और सेवा कर रहे थे और अप्सराएँ तथा गन्धर्व नृत्य कर रहे थे और अपने मधुर वाद्ययंत्रों के साथ गायन कर रहे थे। इन्द्र के सर पर पूर्ण चन्द्रमा के समान तेजवान् श्वेत छत्र तना था, चँवर झला जा रहा था और समस्त राजसी ठाठ-बाट सजा था। इन्द्र अपनी अर्धांगिनी शचीदेवी सहित सिंहासन पर बैठे थे तभी उस सभा में परम साधु बृहस्पति का प्रवेश हुआ। सर्वश्रेष्ठ साधु बृहस्पति इन्द्र समेत सभी देवताओं के गुरु थे और देवताओं तथा असुरों के द्वारा समान रूप से सम्मानित थे। तो भी अपने गुरु को समक्ष देखकर इन्द्र न तो अपने आसन से उठा, न अपने गुरु को बैठने के लिए आसन दिया और न उनका आदर पूर्वक सत्कार ही किया। तात्पर्य यह है कि इन्द्र ने सम्मानसूचक कोई भी कार्य नहीं किया।

ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ।

आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान्श्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निर्गत्य—बाहर जाकर; सहसा—अचानक; कविः—परम विद्वान्; आङ्गिरसः—बृहस्पति; प्रभुः—देवताओं के स्वामी; आययौ—लौटे; स्व-गृहम्—अपने घर को; तूष्णीम्—मौन; विद्वान्—ज्ञात करके; श्री-मद-विक्रियाम्—ऐश्वर्य के मद से विकार ग्रस्त।

बृहस्पति को सब कुछ ज्ञात था कि भविष्य में क्या होने वाला है। इन्द्र द्वारा सारे शिष्टाचार का उल्लंघन देखकर वे पूरी तरह समझ गये कि इन्द्र ऐश्वर्य के मद से फूल उठा है। वे चाहते तो इन्द्र को शाप दे सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे उस सभा से निकलकर चुपचाप अपने घर चले आये।

तर्होव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ।

गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तर्हि—तब तुरन्त; एव—निस्सन्देह; प्रतिबुध्य—समझकर; इन्द्रः—राजा इन्द्र; गुरु-हेलनम्—गुरु की अवहेलना; आत्मनः—अपने; गर्हयाम् आस—पश्चात्ताप करने लगा; सदसि—उस सभा में; स्वयम्—स्वयं; आत्मानम्—अपने आपको; आत्मना—अपने द्वारा।

स्वर्ग के राजा इन्द्र ने तुरन्त ही अपनी भूल समझ ली। यह जानते हुए कि उन्होंने अपने गुरु का निरादर किया है, उन्होंने उस सभा के समस्त सदस्यों के समक्ष स्वयं ही अपनी भर्त्सना की।

अहो बत मयासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ।

यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; बत—निस्सन्देह; मया—मेरे द्वारा; असाधु—निरादरपूर्ण; कृतम्—कार्य; वै—निश्चय ही; दभ्र-बुद्धिना—मन्द बुद्धि होने से; यत्—क्योंकि; मया—मेरे द्वारा; ऐश्वर्य-मत्तेन—भौतिक ऐश्वर्य के नशे में चूर होने के कारण; गुरुः—गुरु; सदसि—इस सभा में; कात्-कृतः—दुर्व्यवहार किया गया।

ओह! अपनी अल्प बुद्धि के कारण तथा भौतिक ऐश्वर्य के मद-वश मैंने यह क्या कर लिया! जब मेरे गुरु इस सभा में प्रविष्ट हुए तो मैंने उनका सत्कार क्यों नहीं किया? सचमुच मैंने उनका अनादर किया है।

को गृध्येत्यण्डितो लक्ष्मीं त्रिपिष्टपपतेरपि ।

ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; गृध्येत्—स्वीकार करेगा; पण्डितः—विद्वान् मनुष्य; लक्ष्मीम्—ऐश्वर्य; त्रि-पिष्ट-प-पतेः अपि—यद्यपि मैं देवताओं का स्वामी हूँ; यया—जिससे; अहम्—मैं; आसुरम्—आसुरी; भावम्—विचार; नीतः—लाकर; अद्य—अब; विबुध—देवताओं के, जो सतोगुण युक्त हैं; ईश्वरः—राजा।

यद्यपि मैं सतोगुणी देवताओं का राजा हूँ, किन्तु थोड़े से ऐश्वर्य से गर्वित और अहंकार से दूषित था। भला ऐसी दशा में कौन इस ऐश्वर्य को स्वीकार करेगा जिससे उसका पतन हो? हाय! मेरे धन एवं ऐश्वर्य को धिक्कार है!

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीभगवान् से प्रार्थना की थी—*न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये*—“हे ईश्वर, मुझे न तो धन या भौतिक ऐश्वर्य की कामना है, न मैं चाहता हूँ कि मेरे अनेक अनुयायी हों जो मुझे अपना नायक मानें, न ही मुझे अपने आपको प्रसन्न रखने के लिए किसी सुन्दर स्त्री की आवश्यकता है।” *मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि*—“मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिए। मैं तो यही चाहता हूँ कि जन्म-जन्मांतर आपका आज्ञाकारी दास बना रहूँ।” प्रकृति का नियम है कि जब कोई अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हो जाता है, तो उसका पतन होने लगता है। यह व्यष्टि तथा समष्टि पर समान रूप से लागू होता है। सभी देवता सतोगुणी हैं, किन्तु कभी-कभी देवताओं के राजा इन्द्र के उच्च पद जैसी स्थिति पर अवस्थित राजा भी अपने ऐश्वर्य के कारण नीचे गिर जाते हैं। आजकल हम अमरीका में वास्तव में यही देख रहे हैं। समग्र अमरीकी राष्ट्र ने आदर्श मनुष्य उत्पन्न किये बिना भौतिक ऐश्वर्य में प्रगति करने का प्रयास किया है। इसका फल यह हुआ है कि सभी अमरीकी लोग अमरीकी समाज में अत्याचारों से आक्रान्त हैं और आश्चर्यचकित हैं कि अमरीका में इतना अनाचार कैसे व्याप्त है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (७.५.३१) में कहा गया है—*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—जो प्रबुद्ध नहीं हैं, उनको जीवन का उद्देश्य, जो वास्तव में भगवान् के धाम को जाना है, ज्ञात नहीं है; अतः वे व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही प्रकार से तथाकथित भौतिक सुविधाओं को भोगना चाहते हैं और सुरा तथा सुन्दरी के आदी हो जाते हैं। ऐसे समाज का व्यक्ति चतुर्थ श्रेणी से भी निम्न होता है। वे अवांछित हैं और वर्णसंकर कहलाते हैं और जैसा कि *भगवद्गीता* में उल्लेख है, वर्णसंकर जनता की वृद्धि

से नारकीय समाज की सृष्टि होती है। आज अमरीकी लोग अपने आपको ऐसे ही समाज में पाते हैं।

किन्तु सौभाग्यवश अमरीका में हरे कृष्ण आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका है और अनेक भाग्यशाली नवयुवक इस आन्दोलन के प्रति सचेष्ट हैं। इसके द्वारा लोग उच्च चरित्र वाले आदर्श व्यक्ति बन रहे हैं, जो मांसाहार, अवैध मैथुन, मद्यपान तथा द्यूत क्रीड़ा से अपने को सर्वथा दूर रखते हैं। यदि अमरीकी लोग अपने राष्ट्र के अवनत अपराधपूर्ण जीवन पर रोक लगाने के लिए उत्सुक हैं, तो उन्हें चाहिए कि वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन को अंगीकार करें और ऐसे मानव-समाज का निर्माण करें जो *भगवद्गीता* में उल्लिखित है (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः*)। उन्हें चाहिए कि समाज को प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के व्यक्तियों में विभाजित कर लें। चूँकि उनमें अभी चतुर्थ श्रेणी से भी नीचे के लोग उत्पन्न हो रहे हैं, अतः अपराधी समाज के संकटों से कैसे बचा जा सकता है? बहुत काल बीता, श्रीइन्द्र को अपने गुरु बृहस्पति का अनादर करने पर पश्चात्ताप हुआ था। इसी प्रकार, यह सलाह दी जाती है कि अमरीकी लोग अपनी भ्रमपूर्ण उन्नत सभ्यता के लिए पश्चात्ताप करें। उन्हें चाहिए कि भगवान् कृष्ण के प्रतिनिधि गुरु से उपदेश ग्रहण करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो सुखी होंगे और उनका राष्ट्र आदर्श राष्ट्र बनेगा जो सारे विश्व का पथप्रदर्शक बन सकेगा।

यः पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कञ्चन ।

प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्म ते न परं विदुः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; पारमेष्ठ्यम्—राजसी; धिषणम्—सिंहासन पर; अधितिष्ठन्—आसीन; न—नहीं; कञ्चन—कोई भी; प्रत्युत्तिष्ठेत्—पहले उठना चाहिए; इति—इस प्रकार; ब्रूयुः—जो ऐसा कहते हैं; धर्मम्—धर्मादेश; ते—वे; न—नहीं; परम्—अत्यधिक; विदुः—जानते हैं।

यदि कोई यह कहे कि राजा के उच्च सिंहासन पर आसीन व्यक्ति को दूसरे राजा या ब्राह्मण के सत्कार हेतु उठकर खड़ा नहीं होना चाहिए, तो यही समझना चाहिए कि वह श्रेष्ठ

धार्मिक नियमों को नहीं जानता।

तात्पर्य : इस प्रसंग के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब कोई राजा या राष्ट्रपति अपने सिंहासन पर आसीन हो तो सभा में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सत्कार करना उसके लिए आवश्यक नहीं है, किन्तु उसे चाहिए कि अपने श्रेष्ठजनों, यथा गुरु, ब्राह्मण तथा वैष्णवों, का आदर करे। उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए इसके अनेक उदाहरण हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण सिंहासन पर आसीन थे और सौभाग्यवश नारद ने उनकी सभा में प्रवेश किया, तो वे नारद को नमस्कार करने के लिए अपने पार्श्वों सहित उठकर खड़े हो गये। नारद को ज्ञात था कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं और श्रीकृष्ण भी जानते थे कि नारद उनके भक्त हैं, किन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्ण ने धार्मिक शिष्टाचार का पालन किया। चूँकि नारद एक ब्रह्मचारी, ब्राह्मण तथा महान् भक्त थे, इसलिए राजा के पद पर होते हुए भी श्रीकृष्ण ने नारद को सादर नमस्कार किया। वैदिक सभ्यता में ऐसा आचरण देखा जाता है। जिस सभ्यता में लोग यह नहीं जानते कि नारद तथा कृष्ण के प्रतिनिधियों का किस प्रकार सत्कार किया जाये, किस प्रकार समाज का निर्माण हो और किस प्रकार कृष्णभावनामृत में अग्रसर हुआ जाये, भले ही वह सभ्यता प्रौद्योगिकी की दृष्टि से जिसका सम्बन्ध नई कारें बनाने और नए गगनचुम्बी भवन निर्माण करने और बाद में उन्हें तोड़ कर और नए बनाने में कितनी ही समुन्नत क्यों न हो, वह मानव सभ्यता नहीं है। मानव-सभ्यता तभी प्रगति करती है जब उसके लोग चातुर्वर्ण्य प्रणाली का पालन करते हों। प्रथम श्रेणी के लोगों को सलाहकार के रूप में, द्वितीय श्रेणी के लोगों को प्रशासक के रूप में, तृतीय श्रेणी के लोगों को अन्नोत्पादन तथा गोरक्षा के लिए और चतुर्थ श्रेणी के लोगों को समाज की तीनों उच्च श्रेणियों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। जो आदर्श समाज की इस प्रणाली को नहीं मानता उसे पंचम श्रेणी का माना जाना चाहिए। वैदिक नियमों तथा विधानों से विहीन समाज मानवता के लिए तनिक भी सहायक नहीं हो सकता। जैसाकि इस श्लोक में कहा गया है—*धर्म ते न परं विदुः*—ऐसा समाज न तो जीवन के उद्देश्य से परिचित है और न श्रेष्ठ धार्मिक नियमों से।

तेषां कुपथदेष्टृणां पततां तमसि ह्यधः ।

ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन (बुरे नेताओं) का; कु-पथ-देष्टृणाम्—कुमार्ग दिखाने वाले; पतताम्—स्वयं गिरकर; तमसि—अंधकार में; हि—निस्सन्देह; अधः—नीचे; ये—जो कोई; श्रद्दध्युः—श्रद्धा रखते हैं; वचः—शब्द; ते—वे; वै—निस्सन्देह; मज्जन्ति—डूब जाते हैं; अश्म-प्लवाः—पत्थर की नाव; इव—के समान।

जो नेता अज्ञानी हैं और लोगों को विनाश के कुमार्ग पर ले जाते हैं (जैसा कि पिछले श्लोक में कहा गया है) वे वास्तव में पत्थर की नाव पर सवार हैं और उनके पीछे अंधे होकर चलने वाले भी वैसे हैं। पत्थर की नाव पानी में नहीं तैर सकती। वह तो यात्रियों समेत पानी में डूब जायेगी। इसी प्रकार जो लोग मनुष्यों को कुमार्ग पर ले जाते हैं, वे अपने अनुयायियों समेत नरक को जाते हैं।

तात्पर्य : वैदिक ग्रन्थों (भागवत ११.२०.१७) में कहा गया है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्

हम सभी बद्धजीव अज्ञान के सागर में गिरे हुए हैं, किन्तु सौभाग्यवश हमारा मनुष्य-शरीर सागर को पार करने का सुअवसर प्रदान करता है, क्योंकि यह एक सुन्दर नाव के समान है। जब गुरु-रूपी कप्तान इस नाव का निर्देशन करता है, तो यह सरलतापूर्वक सागर को पार कर लेती है। यही नहीं, वैदिक उपदेश रूपी अनुकूल हवाओं के द्वारा नाव को पार करने में सहायता मिलती है। यदि कोई इस अज्ञानसागर को पार करने की समस्त सुविधाओं का लाभ नहीं उठाता तो वह निश्चय ही आत्मघात करता है।

जो पत्थर की बनी नाव में सवार होता है, समझो वह डूब गया। सिद्धावस्था प्राप्त करने के लिए मानवता को सबसे पहले उन छद्म-नेताओं का परित्याग करना होगा जो पत्थर की नाव सामने लाते हैं। समस्त मानव समाज ऐसी भयावह स्थिति में है कि इसे बचाने के लिए वेदों के आदर्श उपदेशों का पालन आवश्यक है। ऐसे उपदेशों का सार *भगवद्गीता* के रूप में उपलब्ध है। मनुष्य

को चाहिए कि वे अन्य उपदेशों को ग्रहण न करके गीता के ही उपदेशों का अनुसरण करे, क्योंकि उसमें जीव का उद्देश्य सुस्पष्ट मिलता है। इसीलिए श्रीकृष्ण कहते हैं—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज*—“अन्य समस्त धर्मों को छोड़कर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो।” भले ही कोई श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् न माने, किन्तु उनके उपदेश इतने उच्च तथा मानवता के लिए इतने उपयोगी हैं कि उनके पालन करने से मनुष्य बच सकता है। अन्यथा वह योग की व्यायाम सम्बन्धी विधियों तथा अनधिकारिक चिन्तन (ध्यान) के द्वारा ठगा जाता रहेगा। इस प्रकार वह पत्थर की नाव में सवार होता रहेगा जो समस्त यात्रियों सहित डूबती रहेगी। दुर्भाग्यवश, अमरीकी लोग भौतिक अव्यवस्था से उबरने के लिए उत्सुक तो दिखते हैं, किन्तु कभी-कभी वे पत्थर की नाव बनाने वालों का समर्थन करने लगते हैं। इससे उनको लाभ नहीं होने वाला। उन्हें चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त उचित नाव को ग्रहण करें। तब वे सरलता से बच सकेंगे। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है—*अश्ममयः प्लवो येषां ते यथा मज्जन्तं प्लवम् अनुमज्जन्ति तथेति राजनित्युपदेशिषु स्वसभ्येषु कोपो व्यंजितः*। यदि यह समाज राजनीति के द्वारा निर्देशित होता रहेगा और एक राष्ट्र दूसरे के ऊपर हावी होता रहेगा तो यह अवश्य ही पत्थर की नाव के समान डूब जायेगा। इससे मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता। जीवन का उद्देश्य समझने, ईश्वर को जानने तथा मानव उद्देश्य को पूरा करने के लिए मनुष्यों को कृष्णभावनामृत की शरण लेनी चाहिए।

अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ।

प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णां तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतः; अहम्—मैं; अमर-आचार्यम्—देवताओं के गुरु को; अगाध-धिषणम्—अगाध आत्मज्ञान से युक्त; द्विजम्—पूर्ण ब्राह्मण को; प्रसादयिष्ये—मैं प्रसन्न करूँगा; निशठः—बिना कपट के; शीर्ष्णां—अपने शिर से; तत्-चरणम्—उनके चरणकमल का; स्पृशन्—स्पर्श करके।

राजा इन्द्र ने कहा—अतः अब मैं अत्यन्त खुले मन से तथा निष्कपट भाव से देवताओं

के गुरु बृहस्पति के चरणारविन्द में अपना शीश झुकाऊँगा। सात्त्विक होने के कारण वे समस्त ज्ञान से पूर्णतया अवगत हैं और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। अब मैं उनके चरणारविन्द का स्पर्श करके उन्हें प्रसन्न करने के उद्देश्य से प्रणाम करूँगा।

तात्पर्य : चेत होने पर राजा इन्द्र की समझ में आया कि वह अपने गुरु बृहस्पति का निष्ठावान् शिष्य नहीं है। अतः उसने निश्चय किया कि अब वह *निशठ* अर्थात् निष्कपट बनेगा। *निशठः शीष्णां तच्चरणं स्पृशन्*—उसने अपने गुरु के चरणों को शिर से स्पर्श करने का निश्चय किया। इस उदाहरण से हमें विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा व्यक्त नियम को सीखना चाहिए—

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो

यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि

“गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण की कृपा का आशीर्वाद मिलता है। बिना गुरु के प्रसाद के मनुष्य किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता।” शिष्य को कभी-भी अपने गुरु के प्रति दंभी और कृतघ्न नहीं होना चाहिए। श्रीमद्भागवत (११.१७.२७) में गुरु को आचार्य कहा गया है— *आचार्य मां विजानीयान्*—श्रीभगवान् का कथन है कि मनुष्य को चाहिए कि गुरु को ही साक्षात् भगवान् मानकर उसका आदर करे। नावमन्येत कर्हिचित्—कभी भी आचार्य का अनादर न करे। न मर्त्य-बुध्यासूयेत्—आचार्य को कभी सामान्य जन नहीं समझना चाहिए। अधिक परिचय से अनादर होता है, किन्तु आचार्य के साथ व्यवहार करते समय सतर्क रहना चाहिए। *अगाध धिष्णां द्विजम्*—आचार्य पूर्ण ब्राह्मण होता है और वह अपने शिष्य के कर्मों के निर्देशन की अपार बुद्धि रखता है। इसीलिए श्रीकृष्ण *भगवद्गीता* (४.३४) में कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

“गुरु के निकट जाकर सत्य को जानने का प्रयत्न करो। उनसे विनीत होकर प्रश्न करो और उनकी सेवा करो। वे सत्य को जानने वाले आत्मज्ञानी महापुरुष तुम्हें ज्ञान प्रदान करेंगे।” मनुष्य

को गुरु की शरण में पूर्णरूपेण जाना चाहिए और सेवा द्वारा (सेवया) अधिक आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान्गृहात् ।

बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; चिन्तयतः—गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए; तस्य—वह; मघोनः—इन्द्र; भगवान्—परम शक्तिमान; गृहात्—अपने घर से; बृहस्पतिः—बृहस्पति; गतः—चले गये; अदृष्टाम्—अदृश्य; गतिम्—दशा को; अध्यात्म—आत्मचेतना में अत्यधिक उठा हुआ होने के कारण; मायया—अपनी शक्ति से।

जिस समय देवताओं के राजा इन्द्र इस प्रकार सोच रहे थे और अपनी ही सभा में पश्चात्ताप कर रहे थे, परम शक्तिमान गुरु बृहस्पति उनके भाव को जान गये। अतः अदृश्य होकर वे अपने घर से चले गये, क्योंकि राजा इन्द्र की अपेक्षा वे आत्मज्ञान में अत्यधिक आगे थे।

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान्स्वराट् ।

ध्यायन्धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

गुरोः—अपने गुरु का; न—नहीं; अधिगतः—पाकर; संज्ञाम्—चिह्न; परीक्षन्—चारों ओर खोजते हुए; भगवान्—महान् शक्तिशाली इन्द्र; स्वराट्—स्वतंत्र; ध्यायन्—ध्यान धरते हुए; धिया—बुद्धि से; सुरैः—देवताओं से; युक्तः—घिरे हुए; शर्म—शान्ति; न—नहीं; अलभत—प्राप्त किया; आत्मनः—मानसिक।

यद्यपि इन्द्र ने अन्य देवताओं की सहायता से गुरु बृहस्पति की काफी खोजबीन की, किन्तु वे उन्हें न पा सके। तब इन्द्र ने सोचा, “हाय! मेरे गुरु मुझसे अप्रसन्न हो गये हैं और अब सौभाग्य प्राप्त करने का मेरे पास कोई अन्य साधन नहीं रह गया है।” यद्यपि इन्द्र देवताओं से घिरे हुए थे, किन्तु उन्हें मानसिक शान्ति नहीं मिल सकी।

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ।

देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तत् श्रुत्वा—उस समाचार को सुनकर; एव—निस्सन्देह; असुराः—असुर; सर्वे—सभी; आश्रित्य—शरण जाकर;
औशनसम्—शुक्राचार्य के; मतम्—आदेश; देवान्—देवता; प्रत्युद्यमम्—के विरुद्ध आक्रमण; चक्रुः—किया;
दुर्मदाः—मूर्ख; आततायिनः—युद्ध के लिए शस्त्रास्त्रों से सज्जित।

इन्द्र की दयनीय दशा का समाचार पाकर असुरों ने अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश से अपने आपको हथियारों से सज्जित किया और देवताओं के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।

तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निभिन्नाङ्गोरुबाहवः ।

ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तैः—उनके (असुरों के) द्वारा; विसृष्ट—फेंके गये; इषुभिः—तीरों के द्वारा; तीक्ष्णैः—अत्यन्त नुकीले; निभिन्न—भेदकर;
अङ्ग—शरीर; उरु—जंघा; बाहवः—तथा भुजाएँ; ब्रह्माणम्—ब्रह्माजी की; शरणम्—शरण में; जग्मुः—गये; सह-
इन्द्राः—राजा इन्द्र के साथ; नत-कन्धराः—अपने शीश झुकाये हुए।

जब असुरों के तीक्ष्ण बाणों से देवताओं के शिर, जंघाएँ, बाँहें तथा शरीर के अन्य अंग क्षत-विक्षत हो गये तो इन्द्र समेत सभी देवता, कोई अन्य उपाय न देखकर नतमस्तक होकर तुरन्त श्रीब्रह्मा की शरण लेने तथा उचित आदेश प्राप्त करने के लिए पहुँचे।

तांस्तथाभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ।

कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको (देवताओं को); तथा—उस प्रकार; अभ्यर्दितान्—असुरों के हथियारों से चोट खाकर; वीक्ष्य—देखकर;
भगवान्—परम शक्तिमान; आत्म-भूः—ब्रह्माजी; अजः—जो सामान्य जन की तरह जन्म नहीं लेता; कृपया—अहैतुकी
कृपावश; परया—अधिक; देवः—श्री ब्रह्मा ने; उवाच—कहा; परिसान्त्वयन्—उन्हें सान्त्वना देकर।

जब सर्वाधिक शक्तिमान ब्रह्माजी ने असुरों के बाणों से शरीर बुरी तरह घायल हुए देवताओं को अपनी ओर आते देखा तो उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपावश उन्हें ढाढ़स बँधाया और इस प्रकार बोले।

श्रीब्रह्मोवाच

अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ।

ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—श्रीब्रह्मा ने कहा; अहो—ओह; बत—बड़ा आश्चर्य है; सुर-श्रेष्ठाः—हे देवताओं में श्रेष्ठ; हि—निस्सन्देह; अभद्रम्—अन्याय; वः—तुम्हारे द्वारा; कृतम्—किया हुआ; महत्—महान्; ब्रह्मिष्ठम्—परब्रह्म के प्रति आज्ञाकारी पुरुष; ब्राह्मणम्—ब्राह्मण का; दान्तम्—मन तथा इन्द्रियों को वश में करने वाला; ऐश्वर्यात्—अपने भौतिक ऐश्वर्य से; न—नहीं; अभ्यनन्दत—उचित रीति से स्वागत किया।

श्रीब्रह्मा ने कहा, हे श्रेष्ठ देवताओ! तुम लोगों ने अपने ऐश्वर्य-मद के कारण सभा में आने पर बृहस्पति का सत्कार नहीं किया। वे परब्रह्म-ज्ञाता और इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं, अतः वे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। अतः यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि तुम लोगों ने उनके साथ इस प्रकार दुर्व्यवहार किया है।

तात्पर्य : ब्रह्माजी ने बृहस्पति के ब्राह्मण-गुणों को पहचान लिया था, क्योंकि वे परब्रह्म के ज्ञाता होने के कारण देवताओं के गुरु थे। बृहस्पति ने अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर लिया था, अतः वे योग्यतम ब्राह्मण थे। ब्रह्माजी ने देवताओं की प्रताड़ना की, क्योंकि उन्होंने अपने गुरु का समुचित सत्कार नहीं किया था। श्रीब्रह्मा ने उन्हें यह बताना चाहा कि किसी भी दशा में गुरु का निरादर नहीं होना चाहिए था। जब बृहस्पति ने देवताओं की सभा में प्रवेश किया, तो देवताओं तथा उनके राजा इन्द्र ने समझा कि वे तो प्रत्येक दिन आते रहते हैं, अतः उनको विशेष सम्मान प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु जैसा कहा गया है, अधिक घनिष्ठता से घृणा उत्पन्न होती है। अत्यधिक क्रुद्ध होने के कारण बृहस्पति ने तुरन्त ही इन्द्र का महत्त्व छोड़ दिया। इस प्रकार इन्द्र सहित सभी देवता बृहस्पति के चरणारविन्द के प्रति अपराधी सिद्ध हुए। चूँकि ब्रह्माजी को इसका पता था, इसलिए उन्होंने इस उपेक्षा के लिए उन्हें धिक्कारा। नरोत्तम दास ठाकुर का एक गीत है, जिसे हम लोग नित्य ही गाते हैं। उसमें कहा गया है *चक्षु-दान दिल येई, जन्मे-जन्मे प्रभु सेइ* गुरु शिष्य को आध्यात्मिक चक्षु प्रदान करते हैं, अतः गुरु को जन्म-जन्मांतर स्वामी (प्रभु) समझना चाहिए। किसी भी दशा में गुरु का निरादर नहीं किया जाना चाहिए, किन्तु देवताओं ने अपने भौतिक ऐश्वर्यों से फूल कर अपने गुरु का अनादर किया। अतः *श्रीमद्भागवत*

(११.१७.२७) का उपदेश है आचार्य मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्धया सूयेत्-
आचार्य को सदैव नमस्कार करना चाहिए, आचार्य को सामान्य पुरुष मान कर उनसे द्वेष नहीं
करना चाहिए।

तस्यायमनयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः ।

प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस; अयम्—यह; अनयस्य—तुम्हारी कृतघ्नता का; आसीत्—था; परेभ्यः—अन्यों के द्वारा; वः—तुम सबों की;
पराभवः—पराजय; प्रक्षीणेभ्यः—निर्बल होते हुए भी; स्व-वैरिभ्यः—तुम्हारे अपने शत्रुओं द्वारा जो पहले तुम्हारे द्वारा
पराजित हुए थे; समृद्धानाम्—तुम्हारे ऐश्वर्यशाली होने से; च—तथा; यत्—जो; सुराः—हे देवो।

हे देवो! तुम लोग बृहस्पति के प्रति किये गये अपने दुराचरण के कारण असुरों के द्वारा
पराजित हुए हो। अन्यथा असुर तो अत्यन्त निर्बल थे और तुम लोगों के द्वारा अनेक बार
पराजित हो चुके थे। भला फिर ऐश्वर्य से इतना समृद्ध होते हुए तुम लोग उनसे कैसे हार
सकते थे?

तात्पर्य : असुरों से निरन्तर लड़ते रहने के लिए देव विख्यात हैं। ऐसी लड़ाइयों में सदा असुर
ही पराजित होते थे, किन्तु इस बार देवता पराजित हुए थे। क्यों? जैसाकि यहाँ बताया गया है,
इसका कारण था कि उन्होंने अपने गुरु का अपमान किया था। गुरु के प्रति असम्मान का भाव ही
असुरों से उनकी पराजय का कारण था। शास्त्रों का वचन है कि जो अपने सम्मानीय बड़े व्यक्ति
का अनादर करता है उसकी आयु क्षीण होती है; उसके पुण्य कार्यों के फल का क्षय होता है और
इस प्रकार उसकी अवनति होती है।

मघवन्दिषतः पश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात्

सम्प्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ।

आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मघवन्—हे इन्द्र; द्विषतः—तुम्हारे शत्रु; पश्य—जरा देखो; प्रक्षीणान्—(पहले) अत्यन्त निर्बल होने से; गुरु-
अतिक्रमात्—अपने गुरु शुक्राचार्य का अनादर करने से; सम्प्रति—इस समय; उपचितान्—शक्तिशाली; भूयः—पुनः;
काव्यम्—अपने गुरु, शुक्राचार्य को; आराध्य—पूजा करके; भक्तितः—अत्यन्त भक्ति सहित; आददीरन्—ले सकते हैं;
निलयनम्—धाम, सत्यलोक को; मम—मेरा; अपि—भी; भृगु-देवताः—भृगु के शिष्य शुक्राचार्य के प्रबल भक्त ।

हे इन्द्र! तुम्हारे शत्रु असुरगण शुक्राचार्य के प्रति अनादर करने के कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे, किन्तु अब उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक शुक्राचार्य की पूजा की है, अतः वे पुनः बलशाली बन गये हैं। अपनी भक्ति के द्वारा उन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली है, कि वे अब मुझसे मेरा धाम (सत्यलोक) तक लेने में समर्थ हो चुके हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माजी ने देवताओं को यह बतलाना चाहा कि कोई भी अपने गुरु के बल पर इस संसार में अत्यन्त शक्तिशाली बन सकता है और गुरु की अप्रसन्नता से सब कुछ खो भी सकता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के एक गीत से इसकी पुष्टि होती है।

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो

यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि

“गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण की कृपा का आशीर्वाद प्राप्त होता है। गुरु की कृपा के बिना उन्नति नहीं हो सकती।” यद्यपि ब्रह्माजी के समक्ष सभी असुर तुच्छ हैं, किन्तु उन्होंने गुरु के बल से इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि ब्रह्माजी से उनके धाम ब्रह्मलोक को भी छीन सकते थे। अतः हम गुरु से प्रार्थना करते हैं

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे श्रीगुरुं दीनतारणम् ॥

गुरु की कृपा से गूँगा भी महान् वक्ता बन सकता है और पंगु व्यक्ति पर्वत लाँघ सकता है। अतः जीवन में सफलता चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह इस शास्त्र-वचन को स्मरण रखे, जिसका उपदेश श्रीब्रह्मा ने दिया।

त्रिपिष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य-

मन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।
 न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां
 भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

त्रि-पिष्ट-पम्—ब्रह्माजी सहित सभी देवतागण; किम्—क्या; गणयन्ति—परवाह करते हैं; अभेद्य-मन्त्राः—गुरु के आदेशों के पालन के लिए दृढ़प्रतिज्ञ; भृगूणाम्—भृगुमुनि के शिष्यों का, यथा शुक्राचार्य; अनुशिक्षित-अर्थाः—शिक्षाओं का पालन करने के हेतु; न—नहीं; विप्र—ब्राह्मण; गोविन्द—भगवान् श्रीकृष्ण; गो—गाएँ; ईश्वराणाम्—पूजनीय व्यक्तियों का; भवन्ति—हैं; अभद्राणि—दुर्भाग्य; नर-ईश्वराणाम्—अथवा उन राजाओं को जो इस नियम का पालन करते हैं।

शुक्राचार्य के शिष्य, असुरगण अपने गुरु की शिक्षाओं के पालन में दृढ़प्रतिज्ञ होने के कारण देवताओं की अब तनिक भी परवाह नहीं करते। सच तो यह है कि जो राजा अथवा अन्य व्यक्ति ब्राह्मणों, गायों तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की कृपा में अटूट श्रद्धा रखते हैं और इन तीनों की सदैव पूजा करते हैं, वे अपनी स्थिति में सदैव बलशाली रहते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माजी की शिक्षाओं से यह पता चलता है कि हर एक व्यक्ति को ब्राह्मणों, गायों तथा भगवान् की श्रद्धा समेत पूजा करनी चाहिए। श्रीभगवान् गोब्राह्मण हिताय च अर्थात् वे गायों तथा ब्राह्मणों पर अत्यन्त कृपालु हैं। अतः जो व्यक्ति गोविन्द की पूजा करता है उसे गायों तथा ब्राह्मणों की पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए। यदि सरकार द्वारा ब्राह्मणों, गायों तथा गोविन्द (श्रीकृष्ण) की पूजा की जाती है, तो उसकी कहीं भी पराजय नहीं होती; अन्यथा उसकी सर्वत्र पराजय और भर्त्सना होती रहती है। वर्तमान समय में सारे संसार की सरकारें ब्राह्मणों, गायों तथा गोविन्द का सत्कार नहीं करतीं; फलस्वरूप सर्वत्र अराजकता व्याप्त है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि देवताओं ने एक ब्राह्मण गुरु बृहस्पति के प्रति अनादर प्रदर्शित किया था, अतः महान् ऐश्वर्यशाली होते हुए भी उन्हें असुरों से पराजित होना पड़ा।

तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं
 तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।
 सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो
 यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; विश्वरूपम्—विश्वरूप; भजत—गुरु रूप में पूजा करो; आशु—शीघ्र ही; विप्रम्—पूर्ण ब्राह्मण;
तपस्विनम्—तपस्वी; त्वाष्ट्रम्—त्वष्टा के पुत्र; अथ—तथा; आत्म-वन्तम्—अत्यन्त स्वतंत्र; सभाजितः—पूज्य; अर्थान्—
स्वार्थ; सः—वह; विधास्यते—पूरा करेगा; वः—तुम सबों का; यदि—यदि; क्षमिष्यध्वम्—तुम सहन करो; उत—
निस्सन्देह; अस्य—उसका; कर्म—कार्य (दैत्यों की सहायता का)।

हे देवो! मैं तुम्हें त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाने का आदेश देता हूँ। तुम उन्हें अपना गुरु स्वीकार करो। वे अत्यन्त शुद्ध एवं शक्तिशाली तपस्वी ब्राह्मण हैं। तुम्हारी पूजा से प्रसन्न होकर वे तुम्हारी इच्छाओं को पूर्ण करेंगे, यदि तुम लोग उनके असुरों के प्रति झुकाव को सहन कर सको।

तात्पर्य : ब्रह्माजी ने देवताओं को सलाह दी कि वे त्वष्टा के पुत्र को अपना गुरु मान लें, यद्यपि वे सदैव असुरों के शुभेच्छु रहे हैं।

श्रीशुक उवाच

त एवमुदिता राजन्ब्रह्मणा विगतज्वराः ।
ऋषिं त्वाष्ट्रमुपब्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—सभी देवता; एवम्—इस प्रकार; उदिताः—शिक्षा पाकर; राजन्—हे राजा परीक्षित; ब्रह्मणा—श्रीब्रह्मा द्वारा; विगत-ज्वराः—असुरों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों से मुक्त होकर; ऋषिम्—परम साधु; त्वाष्ट्रम्—त्वष्टा के पुत्र के पास; उपब्रज्य—जाकर; परिष्वज्य—हृदय से लगाकर; इदम्—यह; अब्रुवन्—बोले।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा इस प्रकार श्रीब्रह्मा के द्वारा आदेशित एवं अपनी चिन्ता से मुक्त होकर सभी देवता त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ऋषि के पास गये। हे राजन्! उन्होंने विश्वरूप को हृदय से लगा लिया और इस प्रकार बोले।

श्रीदेवा ऊचुः

वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ।
कामः सम्पाद्यतां तात पितृणां समयोचितः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

श्री-देवाः ऊचुः—देवताओं ने कहा; वयम्—हम सब; ते—तुम्हारे; अतिथयः—अतिथि, मेहमान; प्राप्ताः—आये हैं; आश्रमम्—तुम्हारे आवास; भद्रम्—कल्याण; अस्तु—हो; ते—तुम्हारा; कामः—कामना; सम्पाद्यताम्—पूरी हो; तात—हे प्रिय; पितृणाम्—तुम्हारे पिता के तुल्य हम सबों का; समयोचितः—इस समय के अनुकूल, सामयिक।

देवताओं ने कहा, हे विश्वरूप! तुम्हारा कल्याण हो। हम सभी देवता तुम्हारे अतिथि

होकर तुम्हारे आश्रम में आये हैं। चूँकि हम तुम्हारे पिता तुल्य हैं इसलिए समयानुसार हमारी इच्छाओं को पूरा करो।

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ।
अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

पुत्राणाम्—पुत्रों का; हि—निस्सन्देह; परः—श्रेष्ठ; धर्मः—धर्म; पितृ-शुश्रूषणम्—पितरों की सेवा; सताम्—उत्तम;
अपि—भी; पुत्र-वताम्—पुत्रवानों का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; किम् उत—क्या कहना; ब्रह्मचारिणाम्—ब्रह्मचारियों का।

हे ब्राह्मण! पुत्र का परम धर्म है कि वह अपने माता-पिता की सेवा करे, भले ही उसके

भी अपने पुत्र क्यों न हों और फिर उस पुत्र का क्या कहना जो ब्रह्मचारी हो ?

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥
दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

आचार्यः—अपने आचरण द्वारा वैदिक ज्ञान प्रदान करने वाला शिक्षक या गुरु; ब्रह्मणः—समस्त वेदों की; मूर्तिः—
साक्षात्; पिता—पिता; मूर्तिः—साक्षात्; प्रजापतेः—श्रीब्रह्मा की; भ्राता—भाई; मरुत्-पतेः मूर्तिः—साक्षात् इन्द्र; माता—
माता; साक्षात्—साक्षात्; क्षितेः—पृथ्वी का; तनुः—शरीर; दयायाः—कृपा की; भगिनी—बहन; मूर्तिः—साक्षात्;
धर्मस्य—धर्म का; आत्म—स्वयं; अतिथिः—अतिथि; स्वयम्—स्वयं; अग्नेः—अग्निदेव का; अभ्यागतः—आमंत्रित
मेहमान; मूर्तिः—साक्षात्; सर्व-भूतानि—समस्त जीव; च—तथा; आत्मनः—परमेश्वर विष्णु का।

आचार्य अर्थात् गुरु, जो समस्त वैदिक ज्ञान की शिक्षा देता है और यज्ञोपवीत प्रदान करके दीक्षित करता है साक्षात् वेद है। इसी प्रकार पिता ब्रह्मा का रूप, भाई राजा इन्द्र का, माता पृथ्वीलोक तथा बहन कृपा की, अतिथि धर्म का, आमंत्रित मेहमान अग्निदेव का और समस्त जीव भगवान् विष्णु का साक्षात् रूप होते हैं।

तात्पर्य : चाणक्य पंडित की नीति आत्मवत् सर्वभूतेषु के अनुसार सभी जीवों को अपने समान देखना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ है कि किसी को तुच्छ मानकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। चूँकि परमात्मा प्रत्येक जीव के शरीर में स्थित हैं, अतः जीव का भगवान् के मन्दिर के

तुल्य आदर होना चाहिए। इस श्लोक में बताया गया है कि गुरु, पिता, भाई, बहन, अतिथि इत्यादि का किस प्रकार सम्मान किया जाना चाहिए।

तस्मात्पितृणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ।
तपसापनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; पितृणाम्—पितरों का; आर्तानाम्—जो संकटग्रस्त हैं; आर्तिम्—शोक; पर-पराभवम्—शत्रुओं द्वारा पराजित होकर; तपसा—तुम्हारे तपोबल से; अपनयन्—हटाकर; तात—हे पुत्र; सन्देशम्—हमारी इच्छा; कर्तुम् अर्हसि—पूरा करने में समर्थ हो।

हे पुत्र! हम अपने शत्रुओं से पराजित होने के कारण अत्यन्त शोकमग्न हैं। तुम अपने तपोबल से हमारे कष्टों को दूर करके हमारी इच्छाओं को पूरा करो। हमारी प्रार्थनाओं को पूरा करो।

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ।
यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

वृणीमहे—हम चुनते हैं; त्वा—तुमको; उपाध्यायम्—शिक्षक तथा गुरु; ब्रह्मिष्ठम्—परब्रह्म को पूरी तरह जानने के कारण; ब्राह्मणम्—योग्य ब्राह्मण; गुरुम्—पूर्ण गुरु; यथा—जिससे; अञ्जसा—सरलता से; विजेष्यामः—हम पराजित कर सकें; सपत्नान्—अपने प्रतिद्वन्दी को; तव—तुम्हारे; तेजसा—तपोबल से।

चूँकि तुम परब्रह्म से पूर्णतया परिचित हो और पूर्ण ब्राह्मण हो, अतः तुम जीवन के सभी आश्रमों के गुरु हो। हम तुम्हें अपना गुरु तथा अध्यक्ष स्वीकार करते हैं जिससे तुम्हारे तपोबल से हम अपने उन शत्रुओं को, जिन्होंने हमें परास्त किया है, सरलता से जीत सकें।

तात्पर्य : मनुष्य को चाहिए कि किसी विशेष कार्य के लिए विशेष प्रकार के गुरु के पास जाये। अतः यद्यपि विश्वरूप देवताओं से निम्न स्तर पर थे, किन्तु असुरों को जीतने के लिए उन्होंने विश्वरूप को अपना गुरु बनाना स्वीकार किया।

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाद्दृश्यभिवादनम् ।

छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; गर्हयन्ति—मना करते हैं; हि—निस्सन्देह; अर्थेषु—स्वार्थ के लिए; यविष्ठ-अङ्घ्रि—अपने से छोटे के चरणकमलों पर; अभिवादनम्—नमस्कार; छन्दोभ्यः—वैदिक मंत्रों से; अन्यत्र—छोड़कर; न—नहीं; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; वयः—आयु; ज्यैष्ठ्यस्य—गुरुता का; कारणम्—कारण।

देवताओं ने आगे कहा हमसे छोटे होने के कारण अपनी आलोचना से मत डरो। ऐसा शिष्टाचार वैदिक मंत्रों पर लागू नहीं होता। वैदिक मंत्रों को छोड़कर, सर्वत्र गुरुता आयु से निर्धारित होती है, किन्तु यदि कोई वैदिक मंत्रों के उच्चारण में बढ़ाचढ़ा हो तो ऐसे कम आयु वाले व्यक्ति को भी नमस्कार किया जा सकता है। अतः तुम भले ही सम्बन्ध में हमसे छोटे हो, किन्तु तुम बिना किसी हिचक के हमारे पुरोहित हो सकते हो।

तात्पर्य : कहा गया है *वृद्धत्वं वयसा विना* आयु में बड़ा न होकर भी मनुष्य वृद्ध (ज्येष्ठ) हो सकता है। यदि कोई ज्ञान में वरिष्ठ है, तो वृद्ध न होते हुए भी वह ज्येष्ठ हो जाता है। विश्वरूप देवताओं का भतीजा होने के कारण उनसे छोटा था, किन्तु वे उसे अपना पुरोहित बनाना चाहते थे, अतः उसे उनका नमस्कार स्वीकार करना पड़ेगा। देवताओं ने स्पष्ट किया कि इसमें उसे हिचकना नहीं चाहिए; वह उनका पुरोहित बन सकता है, क्योंकि वह वैदिक ज्ञान में आगे है। इसी प्रकार चाणक्य पंडित का भी उपदेश है *नीचादप्युत्तमं ज्ञानम्* मनुष्य समाज की नीची श्रेणी के व्यक्ति से भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सर्वोच्च वर्ण के सदस्य होने से ब्राह्मण शिक्षक होते हैं, किन्तु यदि किसी निम्न परिवार का व्यक्ति, यथा क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के परिवार का व्यक्ति ज्ञानी है, तो उसे शिक्षक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय (*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.१२८) के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए स्वीकार किया है कि

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।

येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेइ 'गुरु' हय ॥

चाहे कोई ब्राह्मण हो या शूद्र अथवा गृहस्थ या संन्यासी इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये तो सभी भौतिक उपाधियाँ हैं। आत्मज्ञानी पुरुष के लिए ये उपाधियाँ व्यर्थ हैं। अतः यदि कोई

कृष्णभावनामृत के विज्ञान में सिद्ध है, तो वह गुरु बन सकता है, चाहे मनुष्य-समाज में उसकी स्थिति कैसी भी क्यों न हो।

श्रीऋषिरुवाच

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरहित्ये महातपाः ।

स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; पौरहित्ये—पुरोहिती स्वीकार करने के लिए; महा-तपाः—परम तपस्वी; सः—वह; विश्वरूपः—विश्वरूप; तान्—देवताओं से; आह—बोला; प्रसन्नः—प्रसन्न होकर; श्लक्ष्णया—मृदु; गिरा—वाणी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा जब सब देवताओं ने महान् विश्वरूप से पुरोहित बनने के लिए प्रार्थना की तो महातपस्वी विश्वरूप अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीविश्वरूप उवाच

विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययम् ।

कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम्

प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

श्री-विश्वरूपः उवाच—श्री विश्वरूप ने कहा; विगर्हितम्—निन्दनीय; धर्म-शीलैः—धर्म में आस्था रखने वाले; ब्रह्म-वर्चः—ब्राह्मण के तेज का; उपव्ययम्—क्षीण करता है; कथम्—कैसे; नु—निस्सन्देह; मत्-विधः—मुझ जैसा पुरुष; नाथाः—हे स्वामीगण; लोक-ईशैः—विभिन्न लोकों के शासकों द्वारा; अभियाचितम्—विनय; प्रत्याख्यास्यति—मना करेगा; तत्-शिष्यः—उनका शिष्य; सः—वह; एव—निस्सन्देह; स्व-अर्थः—वास्तविक हित, स्वार्थ; उच्यते—कहलाता है।

श्री विश्वरूप ने कहा, हे देवो! यद्यपि पुरोहिती स्वीकारने की निन्दा की जाती है, कि इसकी स्वीकृति से पूर्व-अर्जित ब्रह्मतेज घटता है, किन्तु मुझ जैसा व्यक्ति आपकी व्यक्तिगत प्रार्थना को कैसे ठुकरा सकता है? आप सभी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के महान् आदेशक हैं। मैं तो आपका शिष्य हूँ और मुझे तो आपसे अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए। अतः मैं आपको 'न' नहीं कर सकता। मैं अपने ही स्वार्थ के लिए इसे स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य : योग्य ब्राह्मण के कार्य हैं : पठन, पाठन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह। यजन

तथा याजन शब्द यह बताते हैं कि ब्राह्मण को जनसमुदाय के उत्थान के लिए पुरोहित बनना होता है। जो कोई गुरु का पद स्वीकार कर लेता है, वह अपने यजमान के पापपूर्ण बन्धनों के फलों को निरस्त करता है। इस प्रकार पुरोहित या गुरु द्वारा किये गये पूर्व पुण्यकर्मों के फल का हास होता है। इसीलिए विद्वान ब्राह्मण पुरोहिती स्वीकार नहीं करते। तो भी परम विद्वान ब्राह्मण विश्वरूप ने देवताओं के प्रति सम्मान रखने के कारण उनकी पुरोहिती स्वीकार की।

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं
तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।
कथं विगर्हं नु करोम्यधीश्वराः
पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अकिञ्चनानाम्—उन पुरुषों का जिन्होंने संसार से विरक्त होने के लिए तपस्या करनी स्वीकार की है; हि—निश्चय ही; धनम्—सम्पत्ति; शिल—खेत में गिरे हुए अन्न का संग्रह; उञ्छनम्—थोक बाजार में गिरे हुए अन्न का संग्रह; तेन—उस उपाय के द्वारा; इह—यहाँ; निर्वर्तित—प्राप्त करके; साधु—महान् साधुओं के; सत्-क्रियः—समस्त पुण्य कर्म; कथम्—कैसे; विगर्हम्—निन्दनीय; नु—निस्सन्देह; करोमि—करूँगा; अधीश्वराः—हे लोकों के महान् अधीक्षको; पौरोधसम्—पुरोहिती कर्म; हृष्यति—प्रसन्न होता है; येन—जिससे; दुर्मतिः—अल्पज्ञानी।

हे लोकपालो! सच्चा ब्राह्मण वह है, जिसके कोई भौतिक सम्पत्ति नहीं होती है, वह शिलोञ्छन वृत्ति से ही अपना उदर-पोषण करता है। दूसरे शब्दों में, वह खेतों में गिरे हुए और बड़े-बड़े हाट-स्थलों पर गिरे हुए अन्न को बीनता है। इस प्रकार गृहस्थ ब्राह्मण जो वास्तव में तपस्या के सिद्धान्त का पालन करते हुए स्वयं का तथा अपने परिवार का भरण करता है और आवश्यक पुण्य कर्म करता रहता है। जो ब्राह्मण पुरोहिती कर्म द्वारा धन अर्जित करके सुखी बनना चाहता है, वह अत्यन्त तुच्छ मन वाला होता है। बताओ, मैं इस पुरोहिती को कैसे स्वीकार करूँ ?

तात्पर्य : उच्च श्रेणी का ब्राह्मण अपने शिष्यों या यजमानों से कोई दक्षिणा नहीं लेता। वह तपस्या में संलग्न रहकर खेतों में जाकर किसानों द्वारा ब्राह्मणों के लिए छोड़े गये अन्न को एकत्र करना श्रेष्ठ समझता है। इसी प्रकार ऐसे ब्राह्मण हाटों में जाते हैं जहाँ व्यापारी अन्न का थोक क्रय-

विक्रय करते हैं और इस प्रकार वहाँ व्यापारियों द्वारा छोड़ा हुआ बहुत-सा अन्न इकट्ठा करते हैं। इस तरह ऐसे उच्च ब्राह्मण अपना तथा अपने परिवार का भरण करते हैं। ऐसे पुरोहित अपने शिष्यों से कुछ भी नहीं माँगते। उन्हें क्षत्रियों या वैश्यों की तरह ऐश्वर्य में जीवन बिताने, नकल करने की इच्छा नहीं होती। तात्पर्य यह कि शुद्ध ब्राह्मण स्वेच्छा से गरीबी का जीवन स्वीकार करता है और भगवान् के अनुग्रह पर ही पूर्णतः निर्भर रहता है। बहुत समय नहीं बीता, नवद्वीप के निकट कृष्णनगर में एक ब्राह्मण रहता था जिसे स्थानीय जमींदार ब्रज कृष्णचन्द्र ने आर्थिक सहायता पहुँचानी चाही। किन्तु ब्राह्मण ने इसे अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि वह अपने गृहस्थ जीवन में ही अधिक प्रसन्न है क्योंकि उसे अपने शिष्यों से चावल मिल जाता है और इमली की पत्तियों की वह सब्जी बना लेता है। उसे जमींदार से सहायता लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। निष्कर्ष यह निकला कि ब्राह्मण को भले ही अपने शिष्यों से प्रभूत धन प्राप्त हो, किन्तु उसे चाहिए कि पुरोहिती से प्राप्त इस धन को वह अपने व्यक्तिगत लाभ में न खर्चे, उसे वह परमेश्वर की सेवा में लगाये।

तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ।
भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; न—नहीं; प्रतिब्रूयाम्—मैं अस्वीकार कर सकता हूँ; गुरुभिः—अपने गुरु तुल्य व्यक्तियों के द्वारा; प्रार्थितम्—प्रार्थना; कियत्—तुच्छ; भवताम्—आप सबों की; प्रार्थितम्—इच्छा; सर्वम्—पूर्ण; प्राणैः—अपने जीवन से; अर्थैः—अपने धन से; च—भी; साधये—मैं पूरा करूँगा।

आप सभी मुझसे बड़े हैं। अतः भले ही पुरोहिती को स्वीकार करना निन्दनीय है, मैं आप लोगों की छोटी-से-छोटी प्रार्थना को नकार नहीं सकता। मैं आपका पुरोहित बनना स्वीकार करता हूँ। मैं अपना जीवन तथा धन अर्पित करके आपकी प्रार्थना पूरी करूँगा।

श्रीबादरायणिरुवाच

तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ।

पौरहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तेभ्यः—उन (देवताओं) को; एवम्—इस प्रकार; प्रतिश्रुत्य—वचन देकर; विश्वरूपः—विश्वरूप; महा-तपाः—महापुरुष; पौरहित्यम्—पुरोहिती कार्य; वृतः—उनके द्वारा घिरा; चक्रे—करने लगे; परमेण—परम; समाधिना—मनोयोग से ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा, हे राजन्! देवताओं को यह वचन देकर, चारों ओर से देवताओं से घिरे हुए महान् विश्वरूप अत्यन्त उत्साह एवं मनोयोग से आवश्यक पुरोहिती कर्म करने लगा ।

तात्पर्य : समाधिना शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । समाधि का अर्थ है स्थिर मन से पूर्णतया तल्लीन होना । विश्वरूप अत्यन्त विद्वान् ब्राह्मण था । उसने न केवल देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की वरन् उनकी प्रार्थना को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया और अविचल चित्त से पुरोहिती कर्म करने लगा । तात्पर्य यह है कि उसने किसी आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् देवताओं को लाभ पहुँचाने के लिए पुरोहिताई स्वीकार की । यही पुरोहित का कर्तव्य है । अतः पुरोहित शब्द का तात्पर्य है परिवार का हित करने वाला । पुरः शब्द का दूसरा अर्थ परिवार और हित का अर्थ कल्याण है । पुरः शब्द का अर्थ है—प्रथम । पुरोहित का प्रथम कर्तव्य है कि वह सभी प्रकार से अपने शिष्यों का आध्यात्मिक तथा आर्थिक लाभ सोचे । तभी वह संतुष्ट रहता है । पुरोहित को कभी भी अपने स्वार्थ के लिए वैदिक अनुष्ठान नहीं करना चाहिए ।

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ।

आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सुर-द्विषाम्—देवों के शत्रु; श्रियम्—ऐश्वर्य; गुप्ताम्—सुरक्षित; औशनस्य—शुक्राचार्य की; अपि—यद्यपि; विद्यया—प्रतिभा से; आच्छिद्य—संग्रह करके; अदात्—दिया है; महा-इन्द्राय—राजा इन्द्र को; वैष्णव्या—भगवान् विष्णु की; विद्यया—प्रार्थना से; विभुः—अत्यन्त शक्तिमान् विश्वरूप ।

यद्यपि शुक्राचार्य ने अपनी प्रतिभा एवं नीति-बल से देवताओं के शत्रुओं के नाम से

विख्यात असुरों के ऐश्वर्य को सुरक्षित कर दिया था, किन्तु अत्यन्त शक्तिमान विश्वरूप ने नारायण कवच नामक एक सुरक्षात्मक स्तोत्र की रचना की। इस बुद्धिमत्तापूर्ण मंत्र से उन्होंने असुरों का ऐश्वर्य छीन कर स्वर्ग के राजा इन्द्र को दे दिया।

तात्पर्य : देवों तथा असुरों का अन्तर यही है कि देवता भगवान् विष्णु के भक्त हैं जबकि असुर शिवजी, देवी काली तथा देवी दुर्गा के भक्त हैं। कभी-कभी असुर ब्रह्मा के भी भक्त होते हैं। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी का भक्त था, रावण शिवजी का तथा महिषासुर देवी दुर्गा का। देवतागण भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं (*विष्णु भक्तः स्मृतो दैव*) जबकि असुर सदैव विष्णु भक्तों अर्थात् वैष्णवों के विरोधी होते हैं (*आसुरस्तद्विपर्ययः*)। वैष्णवों के विरोध हेतु असुरगण शिवजी, श्रीब्रह्मा, काली, दुर्गा इत्यादि के भक्त बन जाते हैं। पुराकाल में देवों तथा असुरों में शत्रुता थी जो अब भी चल रही है, क्योंकि शिवजी, देवी दुर्गा के भक्त भगवान् विष्णु के भक्त वैष्णवों से सदैव द्वेष रखते हैं। भगवान् विष्णु तथा शिवजी के भक्तों के बीच का यह तनाव सदा रहा है। स्वर्गलोक में असुरों तथा सुरों के बीच दीर्घकाल तक युद्ध चलता रहा है।

यहाँ हम देखते हैं कि विश्वरूप ने देवताओं के लिए एक सुरक्षा कवच तैयार किया जो विष्णुमंत्र से पूरित था। कभी-कभी विष्णुमंत्र को विष्णुज्वर और इसी प्रकार शिवमंत्र को शिवज्वर कहते हैं। हम शास्त्रों में असुरों तथा सुरों के बीच होने वाले युद्धों में कभी कभी शिवज्वर तथा विष्णुज्वर का प्रयोग होते पाते हैं।

इस श्लोक में आगत *सुर-द्विषाम्* शब्द का अर्थ 'देवताओं के शत्रुओं का' है, जिससे भी नास्तिकों का बोध होता है। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र कहा गया है कि भगवान् बुद्ध का जन्म असुरों अथवा नास्तिकों को विमोहित करने के लिए हुआ। भगवान् अपने भक्तों को नित्य ही आशीर्वाद देते हैं। इसकी पुष्टि भगवान् स्वयं *भगवद्गीता* (९.३१) में करते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—“हे कुन्तीपुत्र! मैं निर्भीकतापूर्वक घोषित करता हूँ कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।”

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ।
तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यया—जिससे; गुप्तः—सुरक्षित; सहस्र-अक्षः—एक हजार नेत्रों वाले इन्द्र देवता ने; जिग्ये—जीता; असुर—असुरों की;
चमूः—सैन्यशक्ति; विभुः—अत्यन्त शक्तिशाली होकर; ताम्—उससे; प्राह—बोला; सः महेन्द्राय—स्वर्ग के राजा महेन्द्र
को; विश्वरूपः—विश्वरूप; उदार-धीः—अत्यन्त उदार चित्त वाला ।

अत्यन्त उदारचित्त वाले विश्वरूप ने राजा इन्द्र (सहस्राक्ष) को वह गुप्त स्तोत्र बता दिया

जिससे इन्द्र की रक्षा हो सकी और असुरों की सैन्यशक्ति जीत ली गई ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत “इन्द्र द्वारा गुरु बृहस्पति का अपमान”

नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए ।